ॐ

श्रीरुक्मिणीपरिणयनाटक

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय सङ्केत
नाम हरिऔध विरचित ।

निवासी
निज़ामाबाद ज़िला आज़मगढ़
अन्तर्गत
पश्चिमोत्तरप्रदेश ।

(यह ग्रन्थकार का पहला ग्रन्थ है)

काशी ।
भारतजीवन यन्त्रालय में मुद्रित हुआ ।

सन् १८९४ ई० ।

समर्पण।

प्यारे!

तुम क्या हो, पूजनीया श्रीरुक्मिणी कौन हैं? हम पामर इस भेद को क्या जानेंगे। हम तो संसारी जीव ठहरे, बुद्धि, विवेचना, तर्क, वितर्क साथ ठहरी, बहुत डूबेंगे, भली भांति विचार करेंगे, कह उठेंगे, कि पांच सहस्र वर्ष हुआ कि भारतवर्ष अन्तर्गत द्वारिका नाम्नी नगरी के तुम एक प्रसिद्ध शासक थे, महाराणी रुक्मिणी विहार प्रान्त मध्य सुशोभित कुण्डलपुर नामक नगर के शासनकर्त्ता महाराज भीष्मक की कन्या थीं; और आगे बढ़ेंगे पुराणवालों का साथ पकड़ेंगे, कुछ श्रद्धा और विश्वास को काम में लावेंगे, कहेंगे, तुम साक्षात् भगवान विष्णु के अवतार हो, महारानी रुक्मिणी श्रीलक्ष्मी अंश सम्भूता हैं। पर प्यारे! सच तो यह है कि तुमारा और हमारी पूजनीया श्री रुक्मिणी का सम्बन्ध कुछ इससे भी उच्च कोटि का और विलक्षण है, कुछ इससे भी अनोखा और न्यारा है, जिसको कोई प्रेममन्त्रदीक्षित सुजनही अनुभव द्वारा अवगत कर सकता है। फिर नाटकरचना का प्रपञ्च कैसा? फिर सभा सुगठन, विवाहकार्य्यसूत्रपात, युद्ध विग्रह का वर्णन कैसा?

प्यारे ! कुछ नहीं । वास्तव में कुछ नहीं ।। केवल लीला मात्र ।।। पर क्या करूँ जब जी कुछ लिखने पढ़ने को चाहता है तो क्या लिखूं ? तुमसे लोकोत्तर चरित्र किसका है जो पहले पहल ग्रन्थ लिखने के लिये लेखनी ग्रहण करके उसको लिखूं । इसीलिये चाहे जिस नाते हो, झूठ हो वा सच, अनुचित हो वा उचित, लिखते बने या न बने, आवश्यकता हुये तुम्हीं को पकड़ना पड़ता है । जो कहो, यह तुमारा उन्मत्त प्रलाप है, क्योंकि मेरे अतिरिक्त दूसरा विश्व में हैही कौन जिसका चरित्र तुम वर्णन करोगे, जब जहां कहीं जिस किसी का जो चरित्र वर्णन किया जाता है, वह सब मेराही वा दूसरे प्रकार से कहो तो मेरी प्रिया रुक्मिणीही का है । तो प्यारे मैं निरुत्तर हूं किन्तु इतना निवेदन अवश्य है कि यह अवस्था मुझको प्राप्त नहीं है, मैं अपने हृदय से केवल तुमारी पूजा करता हूँ संसार में किसी को ऊँच किसी को नीच किसी को मित्र किसी को शत्रु जानता हूँ, किसी को प्रणामयोग्य किसी को अनस्पृश्य समझता हूँ, इसलिये ऐसा आचरण करता हूं । जब वह अवस्था मुझको प्राप्त होगी, जैसा कहोगे करूंगा, इस घड़ी इन पचड़ों से क्या काम है । प्यारे ! बहुत कुछ बक गया, अपने जी की न कहा, तुम भी घबड़ा गये होगे अच्छा जाने दो इन बकवादों से क्या काम

है। यह लो वही तुमारा और तुमारी प्यारी स्त्री का निगूढ लोकोत्तर प्राचीन चरित्र जिसको मैंने तुमारे प्रेमिकों के वर्णित उपस्करों से नाटक के आकार में लिखा है समर्पण के लिये उपस्थित है, अङ्गीकार करो। यदि कोई तर्क बितर्क हो तो हरिऔध के नाते अङ्गीकार करो विशेष क्या।

तुमारा कश्चित्
हरिऔध।



ॐ

श्रीरुक्मिणीरमणो विजयते।

प्रार्थना।

प्रिय सहृदय पाठकगण!

नाटकरचना विषयक मेरा यह प्रथमोद्यम है। इस नाटक के प्रथम मैंने कोई दूसरा नाटक लिपिबद्ध नहीं किया है। नाटक क्या, वास्तव बात तो यह है कि एक "श्रीकृष्णशतक" नामक लघु पुस्तिका के अतिरिक्त इस नाटक के प्रथम अपर कश्चित ग्रन्थ मेरे द्वारा न अनुवादित हुआ है न रचा गया है। नाटक रचकर विद्वज्जनमण्डली में आदृत होना और उसको साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करना, कैसा दुरूहकार्य्य है, इससे विबुधसमाज अनभिज्ञ नहीं है, अतएव इस विषय का उत्थान यहां निरर्थक ज्ञान पड़ता है। हां! यह विषय अवश्य वक्तव्य है कि मैं इस दुरूहता-वारिधि-सन्तरण में कहां तक कृतकार्य्य हुआ हूँ। प्यारे पाठक! मेरी जिह्वा क्या ऐसी क्षमता रखती है जो इस विषय की थोड़ी अवतारणा भी यहां कर सके? कदापि नहीं, इस जटिल प्रश्न की मीमांसा आपलोगों पर निर्भर है! मैं शंकित हूँ कि मुझको आपलोगों के वाक् बाण का

लक्ष्य अवश्य बनना पड़ेगा, क्योंकि यह बहुत सत्य है कि मैंने बामन होकर चाँद के छूने का साहस किया है। किन्तु यदि बाण सावधान करता सनसनाता हुआ समीप से निकल जावेगा अंग भंग की न ठहरेगी, तो मैं अपने ऊपर आपलोगों का प्रसाद समझूंगा, अन्यथा मुझ को वेदना परवश होना पड़ेगा यह अप्रगट नहीं है।

मुझको इस छोटे नाटक में जितने दोषों के होने की आशंका है उतने सद्गुणों के होने की आशा नहीं है। कारण यह है कि यह एक ऐसी अप्रगल्भा और अर्द्धशिक्षिता बुद्धि द्वारा प्रणीत हुआ है जो अपने कलेवर को नाटकरचनाप्रणाली और काव्य-रीति-परिपक्वता आदि आभूषणों से नितान्त असज्जित रखती है। किन्तु हर्ष का स्थान है कि उसने एक लोकोत्तर व्यक्ति की गाथा-गुंफन में अपने समय को व्यय किया है, किसी ऐसे पुरुष का रोमांच कर चरित्र नहीं लिखा है जिसके नाम श्रवण से ही आप कान पर हाथ रखें। अतएव आशा है कि आपलोगों के हृदय में जो विराग मेरी अशृङ्खलवाक्यरचना और अमनोरञ्जक नाटक-प्रणयनप्रणाली से उत्पन्न होगा वह उक्त श्रद्धास्पद पूजनीय महानुभाव के हृदयग्राही सच्चरित्रों और अलौकिक स्पृहणीय कार्य्य-कलापों की समालोचना से विदूरित हो

जावेगा । यद्यपि मेरे सौभाग्य के लिये यह पर्य्याप्त नहीं है, तथापि मैं आपलोगों की इतनीही उद्भावित प्रसन्नता को अपनी मनस्तुष्टि के लिये विशेष समझता हूँ । और इस युक्तिसंगत भाषण पश्चात् किसी अपर विषय का उत्थान निरर्थक समझ अपनी लेखनी को अब यहीं विश्राम देता हूँ ।

अनुगृहीत

पं० अयोध्यासिंह (हरिऔध)

निज़ामाबाद - आज़मगढ़ ।

ॐ

श्रीरुक्मिणीपरिणयनाटक।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध)

कृत

(नान्दी पाठ)

दोहा।

अहि बिधु झख केहरि कमल जेहि घन के उपमान ।
बरसि बारि मति सो हरित करै अबुध महि जान ॥

कुण्डलिया।

बानी गननायक सदा रहत जासु बल सौंह ।
निसदिन ताकी चहत हौं सूधो कुटिल सुभौंह ॥
सूधी कुटिल सु भौंह चहत हौं निसदिन ताकी ।
रचन चहत हरिऔध ग्रन्थ अनुकम्पा जाकी ॥
रहित सुबास प्रसून सुगन्धित कारन प्रमानी ।
जासु कृपा आधार देहि सो बर बुधि बानी ॥

(इसके अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्र०—अहा ! अब विलम्ब का क्या कारण है। (इधर उधर और ऊपर देखकर) रात्रि अपने प्यारे निशाकर के संयोग में दो घड़ी व्यतीत कर चुकी है, रसिकों के नेत्र रङ्गशाला की ओर लग रहे हैं, हमारे साथियों ने उचित परिच्छद धारण करने का प्रयत्न कर लिया है, वाद्यों के स्वर ताल मिल गये हैं, दर्शकों की वाणी कण्ठ में रुक रही है, कौतुक देखने की कामना से उनका हृदय उमग रहा है, जिसका प्रकाश उनकी मन्द मुस्कान और अँगड़ाइयां लेने से भली भांति होता है, रंगभूमि शब्दहीन होकर कालाभिधान भगवान रुद्रकृतप्रलयान्त की भूमि का अनुभव करा रही है, शीतल वायु के मन्दमन्द चलने से चित्त हरा और कौतूहलाक्रान्त हो रहा है, अतएव अब अभिनय होना भी युक्तिसंगत जान पड़ता है (थोड़ा आगे बढ़कर) कोई है ?

(नट का प्रवेश)

नट—(सूत्रधार की ओर देखकर आपही आप) मनुष्य के चित्त को भी ईश्वर ने कैसा बनाया है, अभी आज ही इनका मन कुछ सांसारिक झमेलों से कैसा म-

लीन था, पर अब इस समय कैसा प्रसन्न है, मानो किसी अकाल दृष्टि से आकुल कृषक का मन आकाश को स्वच्छ देखकर आनन्द प्रगट करता है, उत्साह की सीमा नहीं है, उमंग पूर्णिमा के समुद्र समान अनुक्षण बढ़ता जाता है, फिर मैं क्यों न इस आनन्द का भागी बनूं (प्रगट) महोदय ! मैं उपस्थित हूँ, कहिये क्या आज्ञा है ?

सूत्र० –(प्रसन्न होकर) मित्र ! मेरा मन कुछ काल के लिये समस्त सांसारिक झमेलों से रहित और समय उपस्थित असमञ्जसों से निरस्त होकर इस काल ऐसा प्रसन्न है, जैसा किसी काल महाराज भीष्मक का चित्त भगवान बासुदेव और श्रीरुक्मिणी का संयोग हो जाने पर था, मैं चाहता हूँ कि अपने इस आनन्द का भागी किसी उत्तम अभिनय अभिनीत द्वारा सकल दर्शक महाशयों को बनाऊँ, क्या तुम इस समय कोई उत्तम और नवीन नाटक बतला सकते हो ? जिसके अभिनय के लिये मैं बद्धपरिकर हो जाऊँ।

नट –महाशय ! कुछ काल हुआ कि मेरे हृदय में यह कामना आज स्वभावत: हुई कि कोई उत्तम नाटक खेला जाय, अतएव प्रिया ने मेरे हृदय का भाव जान कर एक नवीन नाटक खेलने का प्रयत्न इस भांति कर

रक्खा है, जैसे महारानी जानकी ने भगवान रामचन्द्र के हृदयज विचारों को जानकर अग्नि को अपना निवास स्थान बना रक्खा था, किन्तु मैं उससे पूर्ण अभिज्ञ नहीं हूँ. इस कारण इस विषय का परिज्ञान बिना उसके नहीं हो सकता, आज्ञा हो तो उसको बुलाकर पूछ देखूं ?

सूत्र०—हां ! हां ! बुलाओ !

नट —(नेपथ्य की ओर देखकर) प्रिये ! क्या अभी पात्रों का यथोचित शृङ्गार नहीं हुआ ?

(नटी का प्रवेश)

नटी —प्राणोपम ! हो तो गया, पर इतने विलम्ब होने का कारण केवल आपलोगों का निदेशन देना है, यदि आज्ञा हो तो नाटकपात्रगण को निज कलाकामिनी द्वारा दर्शकजनों के मनहरण करने की आज्ञा दी जावे ।

सूत्र०—वरानने! क्या कोई नवीन अभिनय अभिनीत करने की कामना है ? और यदि नवीन है तो उसका रचयिता कौन है ?

नटी—हां ! रुक्मिणीपरिणय नामक नवीन नाटक खेलने की इच्छा है, जो थोड़ा दिन हुआ कि मृगराज सहित रघुनाथ राजधानी द्वारा निर्मित हुआ है ।

सूत्र०—यह तो कूट सा जान पड़ता है (बिचारकर) अहा! समझ गया, पण्डित अयोध्यासिंह निजामाबादनिवासी रचित, जिनका संकेत नाम हरिऔध है। यद्यपि ये नवीन ग्रन्थकार हैं, और प्रशंसित लेख और उत्तम ढंग इनके नाटक में होने की कम आशा है, तथापि चरित्र विलक्षण है, जो आशा है कि सज्जन दर्शकों को अवश्य मोदजनक होगा, क्योंकि स्वरूपानुरागी मनुष्यों को आभूषण की कोई आवश्यकता नहीं होती, उनको सुन्दर स्वरूपही आनन्दकर होता है।

नट—(हर्ष से) आपके मुख से नवीन ग्रन्थकार प्रभृति शब्द सुनकर मेरा मन इस काल किसी उत्तम नाटक अन्वेषण करने लिये अति असमञ्जस में पड़ गया था, पर अब आपके उक्त नाटक को किसी प्रकार पसन्द कर लेने से वह असमंजस दूर हो गया, माना निविड़ पर्जन्यआच्छादित आकाशमण्डल प्रचण्ड वायु के झोंकों से स्वच्छ और निर्म्मल बन गया।

नटी—प्रियतम! अब वृथाकथोपकथन करके समय नष्ट करने का अवसर नहीं है, राजा जनक समान महाराज भीष्मक भी इस समय कन्यापाणिपीड़न विषय में अति आकुल हो रहे हैं, अतएव सभ्यजनों को एकत्र करके शीघ्र कोई उचित उपाय करना चाहते हैं, सो

अब हमलोग भी चलकर करणीयकर्त्तव्य में तत्पर हों, और जैसे हो उस चिन्ता के निवारण करने का यत्न करें, जिसके कारण महाराज का मुखमयङ्क पीतवर्ण और शरी कृमिखादित काष्ठ की भांति सारहीन होता जाता है।

सूत्र॰—(आपही आप) सत्य है! चिन्ता ऐसीही वस्तु है इससे केवल शरीरही निर्बल नहीं होता, एकही विषय के बार बार बिचार करने से मन भी दुर्बल हो जाता है, जिससे मनुष्य की बड़ी हानि होती है। यह मनुष्य के आन्तरिक भाग में जीवित जन्तु का गुण रखती है, जो सदैव उसके रुधिर और मांस से अपना पोषण करता और उसे निर्बल बनाता रहता है (सुनना नाट्य करके प्रगट) अहा! यह मधुरस्वर-मिलित अनुपम गान की ध्वनि कैसी आनन्दजनक है।

नटी—महाशय! ऐसा जान पड़ता है कि कुछ याचकों का समूह गान करता हुआ इसी ओर आ रहा है।

सूत्र॰—वरेचणि! तो चलो हमलोग भी चलकर आवश्यकीय कार्य्यसाधन में तत्पर हों।

नटी—जो आज्ञा? (सब जाते हैं)

(जवनिका पतन)

प्रथमाङ्क ।

(स्थान राजद्वार के सन्मुख की भूमि)

(महारानी रुक्मिणी अटा पर बिराजमान)

(कुछ याचकों का प्रवेश)

प०या०—अहा! यह नगर भी कैसा रमणीय है, विशेषतः स्वर्ग में कैलाश की भांति, अथवा सत्यलोक में वैकुण्ठ-समान इस नगर में यह राजद्वार कैसा अपूर्व है। किन्तु इसकी छबि और द्वारिका की छबि में चन्द्र और चन्द्रिका कासा अन्तर है। जिस दिन से इन आँखों ने उस स्वर्ग बिनिन्दक नगर को अवलोकन किया है उस दिन से इनकी दृष्टि में कोई दूसरा नगर जँचता ही नहीं। भगवान श्रीकृष्ण और उनके चरित्र धन्य हैं! जिनके पदपाथोज रजग्रहण के कारण द्वारिका को ऐसी शोभा है। (गाता है)

राग सोरठ।

जय प्राची दिसि-देवकिचन्द।

श्रीवृषभानुनन्दिनी कैरविकारक परमाऽनन्द।

असुरध्वान्त जग तापमिटावन मुनिचकोर-सुखदन।

बिमल वेदपथ औषधिपोषक उचरि सुधा सम बैन॥

पातक-रत पामर कपटी नृप कमल करन छबिहीन ।
कल कौमुदी सरिस माया सों कारक जगत अधीन ॥
नास्तिक चोर हियो सन्तापक बिरहि खलन दुखदायक ।
हरिऔध गोविन्द राका रजनी हिय मोद बिधायक ॥ १ ॥

दू०या०— (झटपट उसी सुर में गाता हुआ)

जयति बनज यदुबंस तुमारी ।
अखिल बिस्वबर व्योमप्रकासक प्रगटित निसा अविद्याहारी ॥
जनमन चक्रवाक अनुमोदक खल उलूकगन हिय दुखदाई।
बान भौम आदिक तारागनहत प्रकास कर नृप समुदाई ॥
कुमुदसुयोधनादिअविकासकपौण्ड्कादिजगध्वान्तबिनासी ।
हरिऔधमुनिभृंगबिनोदकबरबिचारपथकमलप्रकासी ॥ २ ॥

सो०या० —(द्वारिका के ध्यान में मग्न होकर) मित्रवरो!

जब से मैंने द्वारिका का परित्याग किया है, उस दिवस से मेरी वही दशा हो रही है, जैसी उस जीव की होती है जो अपने तपोबल से कुछ दिवस स्वर्ग-वास करने उपरान्त पुन: मृत्युलोक में निवास पाता है। भगवान श्रीकृष्ण की मन्द मुसुकान, कमल सी आँखें, घुंघुरारी अलकें, चणभर नहीं भूलतीं अतएव इन दिनों मेरी वैसीही गति है जो गति उस चकोर की हो सकती है जो पृथ्वी के उस भाग को छोड़कर जहां वह परमोत्सुकता से पूर्ण चन्द की मयूखों को

पान करता हो किसी कारण से उस भाग में आ पड़े, जहां कुहू की काली रात हो।

(गाता है)

राग बिहाग।

स्याम को रूप अनूप निहारी।
उपमा सकल मोहि लघु लागत सब बिधि कहत बिचारी।
बिबरनिवासकीनअहिकचलखिमुखलखिनभनिसिस्वामी।
नैन बिलोकि मीन मृग खंजन भये बिकल बनगामी॥
नासा ग्रीवां कटि सुगमन लखि कीर कपोत सिंह गज लाजै।
लखि मृनाल प्रभु भुजप्रलम्ब को दुखो जल जलज समाजै॥
अंग अंग सब रुचिर मनोहर हरिऔध का पै कहि जाई।
नैनन लखो बैन किमि भाखै प्रभुसरूप जनमन सुखदाई॥

चौ०या०—(प्रसन्न होकर) प्रियबर! सत्य है! केवल तुमारीही यह गति नहीं है, ऐसा कौन है जो महात्मा श्रीकृष्ण के सुन्दर स्वरूप को अवलोकन कर तन मन से उस्का अनुरागी नहीं होता, जैसे जितनाही उत्तम दूरदर्शक यन्त्र होता है आकाशमण्डल में उतनेही अधिक और अद्भुत तारे दीखने लगते हैं वैसेही भगवान के विषय में बिचारदृष्टि से जितनी विवेचना की जाती है, उतनेही उनमें विशेष नवीन और विचित्र-गुणगण दृष्टिमान होते हैं, और इसी कारण भगवान का नाम अनन्त है।

(गाता है)

चच्चरीक।

कहिये गुन कौन कौन जदुपति असुरारी।

कमलज मनहरनवार सुरपति भ्रमकारनवार जलपति दुखदारनवार श्रीपति सुखकारी। नाशकर्कसादि क्रूर अनगन-सुखकरन भूर ब्रजजन-आनन्दमूर सन्तनअघहारी। कालिय-सन्तापशमन अघ-बकवृषभादिदमन जमुना कलकूल-रमन मोहन बनवारी। वृन्दावन रासकरन सुरमुनिमन-मोदभरन असरनजन एकसरन गिरवर-करधारी। द्विज तिय आनन्द भौन अखिल-दुहिततापदौन हरिऔध दास तौन चरनन बलिहारी। ४।

पां॰या॰—हाय! कैसे खेद और लज्जा की बात है कि भगवान बासुदेव में इन सब अद्भुत और अलौकिक गुण के रहते बहुत से पामर उनको गोचारक इत्यादि विशेषणों से निन्दा करते रहते हैं। सत्य है, मच्छिका-निकर को सुन्दर अंग में वर्ण अथवा छिद्रही प्रिय होता है, रक्तपयोपूरित कुच में रुधिर कोही ग्रहण करती है। किसी ने कितना सच कहा है—

कबित्त।

"कमल कों आनन कुरङ्गन कों दृग आछे बाँको कटि-केहरि कलाप बाँहें ऐन है। कोकिला कों कण्ठ कोर ना-

सिका धनुष भौंहैं बानी सुभवर जाकै जामे नहिं चैन है ॥ तियन को मोहत फिरत याम आसपास जैसे विरहिन के दाहिबे को पति रैन है । पुनि मतिमन्द लोग जानत न भेव याको एते पर कहैं बरवारी श्याम ऐन है ॥ ५ ॥"

श्रीव०—(स्वगत) अहा ! इस समय मेरे मन का कैसा भाव हो रहा है, याचकों के मधुर और सुस्वरगान संमिश्रित भगवत सुयश ने इसको लोहे चुम्बक समान अपनी ओर कैसा आकर्षित किया है । यद्यपि मैं इस को अधिकार में रखने की बहुत चेष्टा करती हूँ, तथापि यह कभी भगवतसंयोगसुखानुभव करना चाहता है, कभी उसको एक असंभाव्य विषय जानकर विकल हो जाता है, कभी मुझको उपदेश करता है, कि जैसे श्रीअपर्णा ने अपनी तपस्या के बल से अप्राप्य भगवान शिव को प्राप्त किया, उसी प्रकार तू भी भगवान वासुदेव के लिये तपस्या कर ! और मेरी अभिलाषा पूरी करके सुयश ले, कभी कछुवे समान अर्थात जैसे वह अपने अण्डे के पक जाने के दिन की गणना बड़े स्मरण और प्रीति के साथ करता है, उसी प्रकार उस दिन की गणना किया चाहता है जिस दिन उसको भगवान के पदसरोज दर्शन की आशा होवे । हाय ! मैंने मैं तो अभी भगवान का लोक-मोहन स्वरूप दे-

चाहो नहीं, केवल उनके सुयश को सुनकर प्रेम ने मन की यह दशा कर दी। अब तो वह भवन दुःख-स्वरूप और कुलमर्य्याद महारोग ज्ञात होता है, क्षण-भर का वियोग युग समान प्रतीत होता है, नेत्र स्वरूप देखने के लिये, श्रवण मधुर बैन सुनने के लिये, विकल हो रहे हैं। शरीर असमर्थ जान पड़ता है, हाथ पांव कहने में नहीं हैं। सत्य है !

दोहा।

नहिं सुप्रेम केवल लखे हिय में होत उदोत।
बहुधा यह गुन सुने ते प्रगट आपही होत ॥

मेरी यह दशा, शरीर की यह अवस्था, इन्द्रियों की यह गति, पर अब उपचार क्या हो सकता है, सीप का विदीर्ण हृदय स्वाति बुन्द के अभाव में कब पूरित हुआ है (चिन्ता नाट्य करती है)

(नेपथ्य में वीणाध्वनि और गान)

जयति ब्रजबल्लवी प्राणवल्लभ परम। तापसन्ताप उपताप पातकहरन दरन गहि दाप भी भूरि भीषण भरम ॥ कठिन कलिकलुषकुलकाल कल्याण कर कोणकरतूति कौतुक अलौकिक करम। अरनिवर धन्य धुरध्यानधारी भुवाहिक धराधीश के धाम धीरज धरम। निखिलनय नीतिनिधि

नवसमीरजनयन निपट नागर सुनवनीतहूँ ते नरम । मच्यु-
तम मैनमनहरन हरिऔध मङ्गल महामूल मंजादिमोचन
मरम ॥ ७ ॥

श्रोत॰—(चकित सो होकर) अहा! यह अमृत की वर्षा
कौन महाशय कर रहे हैं ?

प॰या॰—(सुनना नाट्य करके) मित्रवरो ! जान पड़ता है
भगवान नारद आते हैं !

स॰या॰—(सानन्द) इसमें क्या आश्चर्य्य है ! भगवत् गुणा-
नुवाद गान का फल सन्तदर्शन होताही है ।

(भगवान नारद का प्रवेश)

ना॰—(याचकों को ओर देखकर) याचकगन ! मैं इस
समय अन्तरिक्षपथ से कुछ आवश्यकीय कार्य्यों के लिये
द्वारिका जा रहा था, अकस्मात् भगवान श्रीकृष्ण
नामांकित तुमलोगों का मधुरगान श्रवणगोचर हुआ,
अतएव मैं यहां आने के लिये बाध्य हुआ, कहो परम
पराक्रान्त भगवान श्रीकृष्णप्रतिपालित द्वारिका की
इन दिनों कैसी अवस्था है ?

स॰या॰—(सादर प्रणिपात पुरस्सर) महात्मन् ! विश्व का
कोई विषय ऐसा नहीं जो आपको अनवगत हो, त-
थापि आपने जो द्वारिका का समाचार पूछकर हम
लोगों को प्रतिष्ठा दी है अतएव हमलोगों को भी

उस विषय को कुछ श्रीचरण की सेवा में निवेदन करना उचित है। यह एक दोहा महानुभाव के प्रश्न का पर्य्याप्त उत्तर होगा ?

दोहा।

खरे द्वार नृपगन रहत सुरगन जात सकात।
धनजनपूरित नगर लखि उर आनँद अधिकात॥

ना० – सत्य है ! सत्य है !! बहुत सत्य है ! ! ! बरन जिस नगर की पृथ्वी अक्लिष्टकर्मैकधाम भगवान श्रीकृष्ण के वज्रांकुशादि चिन्हित आरक्तिम पदतल से सुरक्षित। होती रहती है, उसके लिये यह एक साधारण बात है

श्री रु० – आह! मेरी कामना-पावकशिखा के लिये महात्मा नारद की बातें तो घी से भी बढ़कर हैं ! उनके युक्तिसंगतप्रलाप से मम हृदयोद्भूत भगवान श्रीकृष्ण प्रेम अनुक्षण कैसा बढ़ता जाता है।

ना० –(स्वगत सुनना नाट्य करके) क्या कहा ? "आह ! मेरी कामनपावकशिखा के लिये महात्मा नारद की बातें तो घी से भी बढ़कर हैं" फिर क्या कहा? "उन के युक्तिसंगतप्रलाप से ममहृदयोद्भूत भगवान श्रीकृष्ण प्रेम अनुक्षण कैसा बढ़ता जाता है" (ऊपर देखकर) क्या ये भीष्मकनन्दिनी कुमारी रुक्मिणी के वाक्य हैं ? मैं कृतकार्य्य हुआ। जान पड़ता है मेरे आने के प्रथम

याचकों के गान और बालकों बेड़ो कुमारो के हृदय में भगवत्प्रेमउत्पादन कर दियाथा। चलो यह भी अच्छा हुआ, जिस कार्य्य के लिये मैं आया था, उसके लिये मुझको विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा। तो अब यहां विशेष विलम्ब करने का कौन काम है (प्रगट) याचकगन! मैं तुमलोगों के उत्तर से बहुत प्रसन्न हुआ, और द्वारिका के समाचार से भी अभिज्ञ हो गया. अतएव अब जाना चाहता हूँ।

स॰या॰—जैसी महानुभाव की इच्छा।

(महात्मा नारद का उसी प्रकार गाते २ प्रस्थान)

ए॰या॰ –(स्वगत) जैसे वसन्त ऋतु की शोभा अवलोकन करने से स्वभावत: हृदय में काम का सञ्चार होता है, अथवा किसी महात्मा का दर्शन करने से अकस्मात हृदय में विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार इस राजद्वार की शोभा देखकर हमलोगों को स्वत: भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन का काल स्मरण हो आया, जिससे हमलोगों कोही परमानन्द नहीं हुआ, प्रत्युत समस्त भगवद्गुणश्रवणकर्त्ताओं को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। किन्तु अब भगवान तमारि स्वरश्मियों को आकर्षण कर अस्ताचल को पधारा चाहते हैं, अतएव

हमलोगों को भी डेरे चलना उचित ज्ञात पड़ता है
(प्रगट) मित्रगण ! अब चलने में क्या विलम्ब है ?
क्योंकि सन्ध्या हुआ चाहती है।

स०या०—राजेश्वर का दर्शन हुआही, साथही महात्मा नारद ने भी अनुग्रह किया, हमलोगों की कामना सफल हुई। फिर अब चलने में क्या विलम्ब है, चलो चलें।

(याचकगण 'अथ प्राचीदिशि देवकिचन्द' इत्यादि गाते जाते हैं, साथही यवनिकापतन होती है)

द्वितीयाङ्क।

(स्थान राजसभा)

(महाराज भीष्मक, रुक्म, रुक्मकेश, मंत्री और सभासद्‌गण यथास्थान बैठे हैं)

भी०—(चिन्ता से स्वगत) ईश्वर की रचना क्याही अपूर्व है। वह एकही जठर है, जिससे कन्या पुत्र दोनों उत्पन्न होते हैं, पर एक की अपेक्षा दूसरे के प्रसव का हर्ष और उत्साह विलक्षण होता है। यद्यपि कन्या जायमान होने पर खेद प्रगट करना संकीर्णहृदयों का काम है, ईश्वरदत्त वस्तु पर अरुचि प्रगट करना है,

तथापि मनुष्य कन्या से कभी सुखी नहीं होता। जब वे समर्थ होती हैं, उस समय योग्य घर वर मिलने के लिये जो चिन्ता मा बाप को आ लगती है, उसको वेही जानते हैं, जब मेरे चित्त को परमात्मा ने किसी भाँति असमर्थ नहीं बनाया है, रुक्मिणी को समर्थ देख यह दशा है। तो मैं नहीं जानता घर में समर्थ कन्या देखकर असमर्थों की क्या दशा होती होगी। राजा जनक से बिभवसम्पन्न जन को स्वप्यारी पुत्री जनकनन्दिनी को समर्थ देख कितनी चिन्ता थी, जो राजाओं की सभा में भी छिपी न रह सकी और भीषणमूर्ति धारण करके प्रगट हुई। यद्यपि रुक्मिणी अभी अधिक समर्थ नहीं है, तथापि वायु संचलित चलदल पत्तों समान मेरा मन कैसा चंचल है। नेत्रों से निद्रा बिल्कुल जाती रही है, चित्त सदा उद्विग्न रहता है, चिन्ता शरीर को दुर्बल किये देती है। किन्तु अब इस विषय में अधिक मीमांसा की आवश्यकता नहीं, जो कुछ कर्तव्य हो, सभावालों के परामर्शानुसार स्थिर कर देनाही उत्तम है। (प्रगट मंत्री से) मंत्री! रुक्मिणी विवाहयोग्य हो गई, पर अबतक मेरी दृष्टि में कोई ऐसा राजकुमार नहीं पड़ा है, जो उसके योग्य हो; सब में किसी न किसी विषय की

त्रुटि अवश्य दीखती है इससे हमारा चित्त परम आकुल हो रहा है। क्या तुम कोई उपाय सोच सकते हो? अथवा किसी रूप गुणकुलसम्पन्न राजकुमार को बतला सकती हो? जिसके समाचार वायु की सहायता से मेरा मनमयंक जो अनेक प्रकार के तर्क वितर्क घनपटल में समाच्छन्न है, बाहर निकल आवे?

मं०—(विचारकर) यों तो निजोदरपरायण मदांध बहुतेरे राजकुमार हैं, पर जैसी आपकी अभिलाषा है, वैसे बहुत थोड़े और महानअन्वेषण से मिलेंगे क्योंकि कुल गुणरूपादि जो अपूर्वमणि हैं, सब मनुष्यों में ऐसे नहीं होते, जैसे सब गजराज के मस्तकों में मुक्ता और सम्पूर्ण गहनों में चन्दन नहीं होता।

ए०स०—फिर यदि इन गुणों से रहित है, और बड़ा धनमान और प्रतापी भी है तो किस काम का। मतिमानों ने बैर प्रीति विवाह समान से करना कहा है, असमान से तीनों भयंकर है। वृत्रराज के मारे जाने का, नहुष के सर्प शरीरधारण करने का, शकुन्तला के महत् क्लेशभागी होने का, कारण, केवल उक्त वस्तुओं का असमानता ही था। इससे हम लोगों का मुख्य कर्तव्य है कि जैसे हो सके राजतनया के लिये योग्य वर और समान शक्ति मिलने के लिये परिकरबद्ध होकर प्रयत्न

करें, क्योंकि संसार की यह रीति है, कि मनुष्य जिस कार्य्य के लिये हृदय से यत्नवान होता है (चाहे वह असम्भवही क्यों न होवे) उसको अवश्य प्राप्त करता है। वायुतनय वीर केशरी हनूमान ने अपने साहस से ही जनक राजदुहिता का पता लगाया। महात्मा आसुरि ने अपने उद्योग से ही अगम्य राजस्थल में प्रवेश करके भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन किया। फिर क्या कारण है कि यदि हमलोग सच्चे हृदय और पूर्ण अध्यवसाय से राजदुहितार्थ योग्य पति खोजने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ होंगे और न खोज सकेंगे !

द्रु०स०—यद्यपि भवदीय सभ्य विप्रवर का विचार अति प्रशंसनीय है, किन्तु महाराज ! जहां तक यह अल्पमति विचारता है, यही निश्चित होता है, कि सम्प्रति इस भारतवर्ष में दुर्योधन, जरासंध, शाल्व, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, से अधिक प्रतापी कोई राजा नहीं है, ए अपनी भुजाबल से इन्द्र को जीत सकते हैं। इयो दिक्पाल के मान को दूर कर सकते हैं, इनके धनुष की उग्रता सम्मुख वज्री का वज्र, पिनाकी का पिनाक दंडी का दंड शोभा मात्र है। इनके प्रताप के सम्मुख निदाघांशु शीतल, शीतांशु मलीन, कुबलमाज अगौरव, और त्रिलोकविजयी वीर विनतवैर्य दिखलाई

पड़ते हैं। यदि इनका शुभ्र कुमुदबंधु किसी लाञ्छन द्वारा लाञ्छनित न हो और ए कमोनाथ की दृष्टि में सुयोग्य परिगणित हों तो इस कृपापात्र की दृष्टि में इनसे प्रतिष्ठित, गुणज्ञ, और सुयोग्य वर पृथ्वी में दूसरा कदापि निश्चित नहीं हो सकता।

रुक्म –(झुंझलाकर) बस! अब आगे किसी दूसरे को कुछ कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। और न इस विषय में अधिक विचार और कथनानुकथन का कोई प्रयोजन है, क्योंकि महाराज शिशुपाल को छोड़ जो सब भांति कुल गुणरूपादि में रुक्मिणी के समान है "जिसकी धन्वा की टङ्कार से पृथ्वी चलायमान हो जाती है, सूर्य्य के घोड़े पथ भूल जाते हैं, शेषनाग बधिर हो जाते हैं, सहस्राक्ष के सहस्रों, षड़ानन के द्वादशों, नेत्र बन्द हो जाते हैं, लोक का हृदय कांपने लगता है" दूसरा कोई योग्य वर पृथ्वी में नहीं है, और न अब इस शुभकार्य्य में विशेष विलम्ब करने का प्रयोजन है।

रु॰बी॰ –पूजनीय पिता, माननीय ज्येष्ठभ्राता, अथच स-कलसभासदों को जो अनुमति होवे, सोई उत्तम और शिरोधार्य्य है। किन्तु मेरी समझ में रुक्मिणी के योग्य और उच्चकुलगुणरूपादि सांसारिक मनुष्य मणि

रत्नाकर इस समय त्रिलोक में भगवान वासुदेव के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है।

पद।

तेहि कुल कहा बड़ाई कीजै। जेहि कुल प्रगट भये श्री जदुपति जासु नाम भवसेतु कहीजै। जाहि स्वास ते प्रगट भये जग चार बेद जे गुन उपजाये। ताके गुन अपार अगनित को अस जग को जो बरनि बताये। जेहि प्रकास ते रवि ससि मनमथ जोति सरूप मान जग गावै। ताको रूप अलौकिक अनुपम किमि इक लघुजन पै कहि आवै। भृकुटिविलास जासु माया के अखिल विस्व छन माँहिं नसावै। इदमित्थं असीम बल ताको भूलि कबौं कहिबो न सुहावै। अपर कहा बन तृनहुं न कबहूं बिन निदेस जाके जग डोलै। तासु प्रताप कथन हित कैसे हरी औध पामर मुख खोलै॥

विशेष कहने की कोई आवश्यकता नहीं, सूर्य अपने गुणों से आपही प्रकाशित है, मृगांक अपने सौंदर्य से आपही जगतप्रिय है, ऐसेही महात्मा श्रीकृष्ण भी अपने सच्चरित्रों और अद्भुत कर्मों से आपही लोकविख्यात और प्रिय हैं, उनके परिचय के लिये मुझको किसी वस्तु विशेष का निर्देश अयुक्त जान पड़ती है। अतः इस प्रेमसागर-

संकुला पृथ्वी में कोई ऐसा भी होगा, जो उन महात्मा के सत्कीर्तवारिजकाष्टपद न हो, और जिसके हृदयागार में भगवान के सच्चरित्र के चित्र न खिंचे हों ? कदापि नहीं।

भी०—(सानन्द) प्रिय पुत्र! आज तुम्हारे युक्तिसंगत इन कोमल अथच मधुर वचनों को श्रवण कर चित्त अति आनन्दित हुआ, इतनी थोड़ी अवस्था में तुम्हारी ऐसी विलक्षण मति निरीक्षण कर हम अति सन्तुष्ट हुये। निस्सन्देह रुक्मिणी श्रीकृष्ण कोही पाणिग्रहीता होने योग्य है, क्योंकि रमा की शोभा रमानाथ केही अङ्क मे में है!

स०स०—(एक स्वर से) महाराज! राजकुमार के इस उत्तम परामर्श को श्रवणकर ऐसा कौन होगा, जिस्के हृदय में आनन्द का सञ्चार न हुआ होगा। कुमार जैसे स्वयं तेजमान और दीप्तिसम्पन्न हैं, वैसीही इन की बुद्धि भी है। सत्य है! अमरावती केही सुवर्ण में सुगन्धि होती है।

ए०स०—(आपही आप रुक्म की ओर देखकर) अहा! राजकुमार रुक्म का क्रोध सभासदों के वाक्यों को सुन कर कैसा बढ़ रहा है! जैसा पूर्णिमा को समुद्र की तरंगें बढ़ती हैं। आंखें प्रातःकाल अथवा सायंकाल के अम्भोजकुल के भांति कैसी अरुण हो गई हैं, अ०

धर कैसे फरक रहे हैं, भौंहें कुटिल पुरुषों के मन की भांति कैसी टेढ़ी हुई जाती हैं, मुख प्रात:काल के सूर्य बिम्ब समान कैसा आरक्त हो गया है! यद्यपि उनका कथन कुमार की क्रोधाग्नि में घृत का काम दे रहा है, तथापि उनका वाक्य आद्योपान्त श्रवण करने के लिये उन्होंने उसको कैसा रोक रक्खा है। मानो युगान्तक भगवान रुद्र ने लोकान्त की अभिलाषा करके जीवधारियों के चित्र बिचित्र कथनोपकथन सुनने की इच्छा से कुछ काल के लिये स्वकर्तव्य का परित्याग किया है।

कु० –(क्रोध से) आज इन सद्विवेचकों को क्या हो गया, जो इन्होंने एक अज्ञ बालक के अनुचित परामर्श पर अपनी अनुमति प्रगट की। आज इस सकल सभ्य विद्वज्जनमण्डली की बुद्धि क्या हो गई, जिससे इन शिष्ट महाशयों ने एक अति अयोग्य विचार का अनुमोदन किया। बड़े खेद का स्थल है, बड़ी लज्जा की बात है, बड़े स्पर्द्धा का विषय है, बड़े शोक का समाचार है। जो आपलोगों ने ऐसे अकरणीय कर्म्म की समालोचना करने में थोड़ा भी अनुशीलन नहीं किया, क्या यज्ञ हविकाक के योग्य हो सकती है? क्या सुरसरी अकूपार त्याग क्षुद्र नद सहवास कर सकती है?

क्या रोहिणी राहु समागम में शोभा पा सकती है ? क्या सुधा असुरों के योग्य कही जा सकती है ? इसी भांति क्या रुक्मिणी कुटिल कृष्ण के योग्य निश्चित हो सकती है ? कदापि नहीं। कृष्ण को कौन नहीं जानता, यदुवंशियों की कुलीनता किससे छिपी है ? क्या हुआ जो आज उन्नतिशाली हो गये, विधुन्तुद ग्रहों में परिगणित होने से देवता नहीं हो सकता. फिर जिस की माता पिता का आज तक नामही न ज्ञात हुआ, उसको किस वंश का कहें, कैसे उसके कुल की विवेचना करें, उसका ग्वालों में रहना, दुग्धादि का चुराना, गौवादि का चराना, मातुलादि का मारना, किससे अप्रगट है। वह जिसकी उग्रसेन के भृत्यों में गणना हैं, हमसे क्षत्रियों की समानता कब कर सक्ता है, कब हमसे कुलीनों की कुलोद्भूत कन्या के पाणि ग्रहण करने योग्य कहा जा सकता है ? शिशुपाल जो उससे सब भांति उत्तम और श्रेष्ठ है, जिसका प्रताप अखिल भूमण्डल में व्याप्त है, रुक्मिणी के विवाह योग्य है। उचित है, रुक्मिणी उन्हीं को व्याह दी जावे, और मेरे सामने फिर कृष्ण का नाम न लिया जावे, क्योंकि अयोग्य पति मिलने से केवल कन्याही को कष्ट नहीं होता, वरन उसके दूसरे सम्बन्धियां और पितृ भ्रातादि

को भी बड़ा क्लेश भोगना पड़ता है । देवयानी की कथा से कौन अनभिज्ञ है, अयोग्य पति मिलने से वह अपने अपमान का जितना ध्यान रखती थी. उतनीही दुखी रहती थी, इस कारण उसके पिता असुर गुरु महात्मा शुक्र को जो संकष्ट हुआ करता वह किससे अविदित है ।

स०स० – राजकुमार की जैसी इच्छा ।

(महाराज भीष्मक सभासदों के साथ उठ जाते हैं)

(जवनिका पतन होती है)

तृतीयाङ्क ।

(स्थान गृहान्तर्गत एक पुष्पोद्यान)

(महाराणी रुक्मिणी चिन्तान्वित सिंहासन पर एक कुञ्ज में विराजमान अनामा और अनाभिधाना दो सखियों का प्रवेश)

अ०मा० – सखी अनाभिधाने ! वसन्तागम से इस उद्यान की कैसी शोभा है, रसाल के नवदलों में उसकी नूतन मञ्जरियां कैसी शोभा दे रही हैं, कोकिला की वाणी कैसी सुहावनी लगती है, पाटल के सरस सुमनों के

मकरन्दों को पान कर भ्रमरगण कैसा शब्द कर रहे हैं, नवीन अथच हरित पत्रों से मूल से आशिखर सज्जित पादपगण कैसे सुन्दर जान पड़ते हैं। उनके उन हरित पत्रों के मध्य सुललितकलितकुसुचय की कैसी शोभा हो रही है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो भगवान कुसुमायुध ने निज हरित वितानों को विविध रंग के अनुपम चित्रों से चित्रित किया है। पुष्पसुरभिसौरभित वायु के मन्द मन्द चलने से चित्त कैसा प्रफुल्लित होता है, रसालमञ्जरीमद निष्कासित सुगन्धि द्वारा उद्यान कैसा सुगन्धमय हो गया है, सरों में विकसित सरसिज कुसुमों की कैसी छवि है। जान पड़ता है इस मनोहर उद्यान की शोभा देखने के लिये सर ने अनेक नैन धारण किये हैं। (चकित सी होकर) प्रिय सखी! उस (तर्जनी द्वारा लक्ष्य करती है) मालती के सघन कुञ्ज में जहां सूर्य्य की किरणें कठिनता से गमन करती हैं प्रकाश कैसा हो रहा है? ऐसा ज्ञात होता है किसी ने निविड़ अन्धकार आच्छन्नभवन को एक उज्वल दीप्तिमान मणि द्वारा प्रकाशित किया है।

अ॰मा॰—(कुछ काल तक देखकर आश्चर्य से) अनामे! यद्यपि मैं बहुत विचारती हूँ कि उस कुञ्ज में इतना प्रकाश होने का क्या कारण है, तथापि मेरे ध्यान में

कोई बात नहीं आती । क्या इस उपवन को नन्दन बन से अनुत्तम अवलोकन कर देवराज शचीपति ने सस्त्रीक उस स्थान को शोभित तो नहीं किया है ! अथवा निज प्रिय मित्र ऋतुनायक बसन्त के साथ भगवान कुसुमायुध ने उस सघन कुञ्ज को शोभा को द्विगुणित बनाया है। यद्वा भगवान दिवाकर ने अरुण को अपना प्रतिनिधि स्थापन कर शीतल होने की कामना से उस क्रीडास्थल को विश्रामस्थल कर रक्खा है। किम्वा कृपानाथ ने निज प्रिया रजनी के विरह से कातर हो अन्वेषण करते २ उस कुञ्ज में उसके होने की आशंका करके उसमें पयान किया है ! वा कश्चित देवबधू किम्वा किसी अप्सरा ने उपवन शोभा अवलोकनोपरान्त उस एकान्तस्थल को अपने तेजोमय आभूषणों और शरीर द्वारा आरञ्जित करना चाहा है । (सूंघना नाट्य करती है) अच्छा ! समझ गई ! जान पड़ता है राजनन्दिनी रुक्मिणी उस निकुंज में विराजमान है क्योंकि यह वायु जो उस ओर से आ रही है वैसीही सुगन्धित है जैसी राजकिशोरी के शरीर की सुबास है।

अ०मा० — सत्य है ! चलो अब हम दोनों भी वहीं चलें और जैसे जनकनन्दिनी को उनकी सखियों ने मर्या

दापुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र का परिचय देकर उनको आनन्दित किया था, वैसेही हम दोनों भी राजतनया को शिशुपाल का परिचय देकर (जिसके यहां रुक्म ने आज टीका भेजा है) आनन्दित करें।

अ०ना० हां! चलो! (जाती हैं)

रु०—(ठंढी स्वांस भरकर स्वगत) हे मन! तूही धन्य है! जो इस प्रकार प्राणनाथ श्रीकृष्ण के पादारविन्द का मिलिन्द हो रहा है, कि नाना विघ्नों, तीव्र कण्टकों की आशंका होने पर भी उसके ध्यानानन्द मधुपान से विरक्त नहीं है! शरीर का क्या, आज रहा कल न रहा! मुझको तो तभी इससे निराशा हो गई, जब मेरे कानों ने इस असह्य रोमांचकर समाचार को सुना कि "रुक्म ने आज शिशुपाल के यहां टीका भेज दिया।" पर हाय! ए नैन जो सर्वदा प्राणनाथ की अलौकिक छवि अवलोकन करने के लिये चकोरवत् उत्सुक रहे! ए कर जिनको प्रभुपादारविन्द सेवन की बड़ी उत्कण्ठा है! ए श्रवण जिनको प्रियतम के कोमल मधुकर अथच मेघगम्भीर भाषण सुनने की बड़ी कामना है! ए नासाछिद्र जिनको प्राणपति के अतसीकुसुमोपमेय कान्ति सम्पन्न शरीर की सुगन्धि घ्राण की एकान्त इच्छा है! यह अंकम जिसको प्राण धन

जीवन को भर अंक भरने का परम अनुराग और घनी लिप्सा है। क्या अब अपनी अभिलाषा को न पूरी कर सकेंगे? क्या इन अभिलाषाओं की विशद बेलि जो हृदयालवाल में भली भांति फैली हुई है, अब उस घनश्याम की कृपावारि से सिंचित न होकर सूख जायगी? विधाता! तू बड़ा कठोर है! जो पहले मन को प्रियतम प्रीति मे संलग्न कर, अब उसको वियोग का फल चखाया चाहता है। और उसकी इतनी बिकलता देखकर भी तेरा हृदय नहीं द्रवता। हे अपटु! यद्यपि तेरी अपटुता अप्रगट नहीं। क्योंकि तेरीही कुमति का यह फल है कि जगन्नोत्सव निसाकर असित लांछन द्वारा लांछनित है! जगज्जीव आशा पात्र उदधि लवण है! कुसुमकुलशिरोमणि पाटल की शाखा कण्टकाकीर्ण है! चतुराकर असतंस, गुणगणैकनिलय, मनुष्य जाति मृत्युभय संत्रसित है। तथापि कहीं कहीं वह अतिसय खेदजनक होती है। ब्रह्मा! क्या तू ऐसे ऐसे कामों को करके सुखी रहेगा? कदापि नहीं! अवश्य कोई वह दिन भी होगा, जिस दिन निज सताये हुये लोगों की पुकार से विकल होकर तुझको भी अप्रिय कर्म का फल भोगना पड़ेगा। हा! कहां इस बात की अभि

लाषा थी कि एक वह दिन होगा जिस दिन मैं प्राण-प्यारे की दासी करके संसार में प्रख्यात हूंगी, और अपने को कृतकृत्य मानूंगी । कहां अब इस बात की चिन्ता है कि किस दिन इस शरीर को त्याग उस अधम शिशुपाल का मुख न देखूंगी, और अपना धर्म निबाहूंगी । हाय! क्या सचमुच अब प्राणनाथ के दर्शन से ए नैन सफल न होंगे? क्या वास्तव में ए पापी प्राण प्राणनाथ के संयोग सुख का अनुभव न कर सकेंगे? हा! निर्दयी दैव!! न जाने तुझको ऐसा करने में क्या लाभ है!!! (मूर्छित होकर गिरना चाहती हैं. गिरते देख दूर से दौड़ कर अनामा उनको पकड़ लेती है साथही अनाभिधाना भी दौड आती है)

अ०मा०—(व्याकुल होकर) सखी अनाभिधाने! देख! राजकुमारी की इस समय कैसी दशा हो रही है, मुख प्रातःकालीन मयंक समान पीतवर्ण हो गया है नेत्रों से अश्रुबिन्दु मुक्ता समान गिरे जाते हैं. हृदय बार बार कंपित हो उठता है, संपूर्ण अंग शिथिल हुआ जाता है, शरीर में इतनी ज्वलन है कि उसकी आंच से समीप खड़े रहना कठिन है, सकल आभूषण इतस्ततः हो गये हैं. संज्ञा नष्टप्राय है, क्या तुम इसका कारण बतला सकती हो?

अ०ना० – "सखी ! इस समय कारण जानने के लिये अधिक विचार करना व्यर्थ है। वरन राजनन्दिनी को सुधि में लाने का प्रयत्न करना अत्यन्त उचित जान पड़ता है। क्योंकि सुधि हुये पीछे सब कारण आपही ज्ञात हो जावेंगे। दीपक द्वारा भवनान्धकार विदूरित होने उपरान्त उसमें की सब वस्तु आपही दीखने लगती हैं (अंचल द्वारा वायु करती है)।

द० –(सुधि में आकर) अरे मन ! तू इतना क्यों आकुल होता है, ईश्वर बड़ा विलक्षण है ! उसके सन्मुख कोई भी विषय असाध्य नहीं, क्या आश्चर्य है जो उसकी कृपा से तेरी कामना पूरी होवे। क्या दमयन्ती को कभी आशा थी कि नल के मुखचन्द्र दर्शन से उसका हृत्कुमुद फिर विकसित होगा पर उस करुणालय जगदीश की कृपा से उसकी अभिलाषा पूर्ण ही हुई।

अ०मा०—राजतनये ! यद्यपि कोई भेद तुमारा ऐसा नहीं है, जो हमलोगों पर अप्रगट होवे, तथापि जिस कारण से तमारी आज यह दशा है, उससे हम सब सर्वथा अनभिज्ञ हैं। आज मन तुमारे बिवाह के मंगल समाचार को सुनकर बड़ा आनन्दित था, उस मंगलमय दिवस की परिगणना बड़ी उत्सुकता के साथ करता रहा, पर इस काल तुमारी ऐसी शोचनीया अ

दशा देखकर उसका वह आनन्द ऐसे उड़ गया, जैसे पारा अग्नि सपर्क से उड़ जाता है, क्या किसी रोग करके तुमारी यह दशा है अथवा कोई दूसरा कारण है? प्यारी, शीघ्र बताओ, जिससे हमलोग उसके निवारण का तत्काल प्रयत्न करें, क्योंकि तुमारी यह दशा देखकर मन ऐसा उद्विग्न है, जैसे मणि खो जाने की आशंका से सर्प विकल होवे।

रु०—सखी मनाम! अब क्या प्रयत्न हो सकता है, जो होना था सो तो होही गया। अब क्या संभव है कि रुक्म अपने प्रण को त्याग देगा, जब उसने शिशुपाल के यहां टीकाही भेज दिया तो अब त्यागने की कौन आशा है। पर क्या भागीरथी के प्रवाह को रत्नाकर की ओर से बलात रोककर कोई किसी अपूर्ण सरोवर की ओर कर सकता है? अथवा बसुन्धरा का सूर्य्य के आस पास का भ्रमण करना अवरोध होकर किसी क्षुद्र ग्रह के आसपास हो सकता है? ऐसेही जिस मनमयंक ने अपने को श्रीकृष्ण पादरज दर्शनभानु से प्रकाशित करने की अभिलाषा की है, भला यह कब हो सकता है कि अब वह शिशुपाल से खद्योत का आश्रय करके अपने को कलङ्कित करेगा॥

म०मा०—मन में अकस्मात बिना विचारे ऐसी अभिलाषा

कैसे करली, यद्यपि चन्द्रमा सूर्य्य केही प्रकाश से प्रकाशित है, किन्तु चन्द्रमा के इत प्रकाश होने का कारण भी तो सूर्य्यही हैं। फिर जिससे उपकार के साथ अपकार की भी आशंका है, और जिस कार्य्य के होने की कदापि संभावना नहीं, उसके लिये आग्रह के वशीभूत होना अयुक्ति छोड़ और क्या हो सकता है।

श्रीरु०—फिर मन क्या स्ववश है! यदि इसको युक्तिही सूझती और अपने हानि लाभ काही विचार होता तो ऐसा क्यों करता? इसके अतिरिक्त जिसने प्रेम मार्ग में पैर रक्खा है, उसको हानि लाभ से क्या प्रयोजन! उपलभय से चातिकी स्वाति घन की आशा त्याग किसी क्षुद्र सरोवरादि को कर सकती है? अथवा कंटक विद्ध होने की आशंका से चंचरीकपाटल प्रसून से विरत हो निर्गंधि जवासपुष्प से प्रीत हो सकता है? कदापि नहीं? फिर मैं कब प्राणभय से भगवान वासुदेव के पादारविन्दसेवन ध्यान से विरक्त हो सकती हूं।

अ॰ना॰—राजनन्दिनी! प्रीति वही उत्तम होती है, जो परस्पर हो, एक ओर से तो प्रीति का प्रवाह उमड़ कर चले और दूसरी ओर उसके आने के लिये मार्ग

भी न हो तो ऐसी प्रीति किस काम की । पतंग के दीपक का भाव जाने बिना उससे प्रीत होने का कैसा भयंकर परिणाम होता है ॥

श्रीह०—प्रीति तो वही प्रशंसनीय होती है, जो निस्स्वार्थ हो, किसी उपकार अथवा उत्तमता की आशा से प्रीति करना प्रेम का निकृष्ट मार्ग है । निज प्रीति-पात्र के अनजान में और उससे अपमानित होने पर जो प्रेम ध्रुव समान अटल रहता है, विबुधों की दृष्टि में वही उत्तम और उत्कृष्ट गिना जाता है । जैसा माननीया जनकराजदुहिता का भगवान रामचन्द्र के साथ था, अथवा अस्मादा वृषभानुनन्दिनी और प्रातः-स्मरणीया गोपीजन का श्रीगोपीवल्लभ के साथ है ।

अ०मा०—जैसे प्रचण्ड केहरी के सुतीक्ष्ण नखों का व्रण मेघगम्भीर स्वन श्रवण कर विदीर्ण होने लगता है । वैसेही तुमारे शोक से आहतमन का संताप कुमार रुक्म के राजसभा में तरजने का समाचार स्मरण कर अधिक हो जाता है । पर हाय ! क्या महात्मा जनक के आग्रह को कोई निवारण कर सकता था, यदि श्रीजनकनन्दिनी के सौभाग्यबल से पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र द्वारा धनुषभंग न होता !

श्रीह०—सखी धनामें ! रुक्म अपना हठ भलेही निबाहे

मुझको इस में कुछ कथन की कोई आवश्यकता नहीं। पर मेरे हृदय का भाव ब्रह्मा के लेख की भांति किसी प्रकारही नहीं पलट सकता। वायु अपने प्रचण्ड वेग से घनपटल को निवारण करही देती है, पर इससे चाहे चात्रिक के भाव में कुछ अन्तर होता हो, कदापि नहीं होता॥

पद।

कहा लाभ बहु कहे सुने में। दुखी भये मन सोक बढ़ाये बिबिध तर्क हिय माहिं गुने में॥ त्यागि कृष्णपद कंज प्रीति छन आन ध्यान नहिं होत हिये में। भलो होत जिय एकं आस विस्तास एक इक ओट किये में॥ बसी आनि हिय धाम स्याम छबि रोम रोम अरु नैन दोऊ में। दियो छोरि कुल नीति रीति रति चहौं नाहिं अब भूलि सोऊ में॥ परो लाज पै गाज जाहि ते अंतर होय मुरारि प्रेम में। कहा लाभ प्रभु बिमुख जोग बिज्ञान ज्ञान अरु किये नेम में॥ अहै हानि हरिऔध नाथ तजि आन माहिं निज चित्त दिये में। दोसिमान मनि त्याग कांच को कहा लाभ ब्यवसाय किये में॥

अ०मा०—राजकन्यके! तुमारा व्रत बड़ा कठोर है, परमात्मा तुमको इस व्रत के उद्यापन में कृतकार्य्य करे,

(ऊपर देखकर) क्या अब संध्या समय समीप है ? तो अभी कहिये यह कार्य्यों का परिशोध करना भी अवशेष है। राजाकृञ्ज ! चलो राजमंदिर को चलें॥

अ॰ना॰—सखी सत्य में ! सत्य है ! दिनमणि, जिसने अपनी प्राणप्यारी छाया के अन्वेषण में बड़ा परिश्रम किया था, उसको न पाकर, वियोगी पुरुषों की भांति अब उसके वियोग से कैसा मलीन और निस्तेज हो रहा है। अधिक परिश्रम करने से उसका मुख कैसा अरुण हो गया है। पादपगण जिन्हों ने छाया को अपने अधोभाग में शरण दिया था, अब अपनी विजय समझ कैसे हरित और प्रफुल्लित हो रहे हैं। पक्षिगण जो इतस्ततः कलरव करते वृक्षों की ओर आते दृष्टिगत होते हैं, उनको और वृक्ष के पत्रों का संचालित होना देखकर ऐसी प्रतीति होती है, मानों पादपगण पक्षिसमूह को अपने विजय का शुभ समाचार सुनाने के लिये संकेत द्वारा निकट बुला रहे हैं, किन्तु वह पहलेही इस विजय समाचार से अभिज्ञ होकर उन को जीत की बधाई दे रहे हैं। (इधर उधर देखकर) अहा ! अब तो सूर्य्य का कुछ प्रकाश शेष न रहा, शीतलमंद सुगंध त्रिविध वायु चलने से संसार का चित्त हरा हो रहा है, किन्तु प्यारी रुक्मिणी के दुःख

से हम लोगों का मन मलीन और अनोत्साह है। सन्ध्या समय की सुख सामग्री आज हम लोगों के उपयुक्त नहीं है॥

श्री६०—सखियो! क्यों वृथा तुम सब मेरे साथ दु:खिनी बनती हो, चलो चलें।

अ०मा०—राजनन्दिनी की जैसी आज्ञा।

(सब जाती हैं)

चतुर्थाङ्क।

(स्थान राजभवन भगवान श्रीकृष्ण सिंहा-सन पर विराजमान)

(एक ब्राह्मण का प्रवेश)

ब्रा०—(आपही आप) मेरा मन द्वारिका के बाह्योपगत भवनों की छटा देखकर इतना चमत्कृत हुआ था, कि अपने को बिल्कुल भूल गया था। किन्तु इस काल महात्मा श्रीकृष्ण के लोकललाम गृहों को देखकर इसकी जैसी दशा है वह उस अवस्था से भी विलक्षण है। मेरी आँखों ने बड़े २ रम्य मन्दिरों को देखा है, किन्तु इस मन्दिर और अवलोकित मन्दिरों की शोभा

में, बैकुंठ और एक साधारण गृह का सा अंतर है। आहा ! कनकनिर्मित भीतों में जो मणियां जटित हैं, वह सुमेरप्रान्तस्थित भगवान दिवाकर से क्या कम दृष्टिरंजक हैं, स्वच्छता देखिये तो दर्पण क्या है, सरितसरों का निर्मल जल क्या है । ग्रीष्मऋतु की चटकीली धूप शरदर्तु की विमल चांदनी क्या प्रकाश सन्मुख स्थान ग्रहण कर सकती है, कदापि नहीं । (सामने देखकर) वह मकरध्वज मानमर्दक महात्मा श्रीकृष्ण सिंहासन पर बिराजमान हैं ! आहा ! क्या मेरी आँखों ने कभी ऐसा सुन्दर स्वरूप देखा है ? क्या कानों ने कभी ऐसे लोकमोहनी मूर्ति का वर्णन सुना है ? इस काल तो मुझको जगतपिता धाता के आठ, देवसैन्यनायक श्यामकार्तिक के द्वादस, भगवान भूतनाथ के पंचदश, और सचीप्राणवल्लभ देवराज के सहस्र नेत्रों पर ईर्षा हो रही है । किन्तु वृथा, क्योंकि महात्मा ब्रह्मादि की कौन कहे, क्या देवराज इन्द्र जिसको सहस्र आँखें हैं प्यारे श्रीकृष्ण की छवि अवलोकन कर सन्तुष्ट होता होगा ? उनकी दर्शनेच्छा तो हमलोगों से भी अधिक बलवती होती होगी । नृपकुलतिलक राजराजि पृथु सहस्र श्रवणों से भगवत्सुयश श्रवण करते थे, पर क्या सन्तुष्ट होते थे ?

महात्मा श्रीकृष्ण का दर्शन करके आज मेरे नेत्रही सफल नहीं हुये, मेरा रोम रोम पवित्र हो गया, क्योंकि मैं इस काल उस पुरुष का दर्शन कर रहा हूँ, जो अनादि नित्य, निर्विकार, और जन्म जरादि रहित है। जिसने स्वभक्तजन रक्षणार्थ निजेच्छावश यह पञ्च-तत्वात्मक शरीर धारण किया है। आज ऐसा कौन तप, यज्ञ, दान है जिसको मैंने नहीं किया, ऐसा कौन व्रत उपासना ज्ञान है जिसका फल मैंने नहीं पाया। पञ्चानन लोमस. सनकादि को भी यह आनन्द कभी न प्राप्त हुआ होगा, जो आनन्द इस क्षण मुझको प्राप्त है। (आनन्द में मग्न होकर खड़ा रह जाता है, भगवान ब्राह्मण को आते देख, सिंहासन से उतर प्रणाम करते हैं, और ले जाकर उसी पर बिठाते हैं)।

श्रीकृ०—(पादप्रच्छालनादि उपरान्त) द्विजदेव ! यद्यपि आपका इस लघुगृह को पावन करके मुझे कृतार्थ करना स्वाभाविक धर्म्म है. क्योंकि रविचन्द्र अथवा पयोद की भांति महज्जनों की यह नैसर्गिक प्रकृति है कि वह बिना इच्छा प्रगट किये संसार का उपकार करके उसको कृतकृत्य करते हैं, तथापि मैं पूछने का साहस करता हूँ कि किसी कार्य्य विशेष से तो आपने अपने इस कमल जैसे कोमल चरणों को कष्ट नहीं दिया है ?

ब्रा०—(चकित सा होकर स्वगत) अहा ! भगवान श्रीकृष्ण के नवनीत से कोमल, पीयूष से मधुर, इक्षु समान रस-पूरित बचनों को श्रवण कर, और उनकी महज्जन अङ्गीकृत नम्रता और दैन्य अवलोकन कर मेरे हृदय का कैसा भाव हो रहा है, मैं द्वार पर द्वारपालों से न रोके जानेही को उक्त महात्मा की ब्राह्मणों पर बडी अनुकम्पा समझता था, पर इस सन्मान और सप्रेम आलाप सम्मुख सच तो यह है कि वह एक साधारण बात थी । उत्तमजनों की कैसी उदारनीति है जब उनको गौरव प्राप्त होता है, वह फलित वृक्ष अथवा जलपूरित मेघ की भांति कैसी नम्रता धारण कर लेते हैं। सत्य है! महत्व पाकर बर्षाकाल के क्षुद्र नदों की भांति अति शीघ्र उमड़ चलना नीच मनुष्यों काही कर्म है (प्रगट) दीनबन्धु! यद्यपि मेरे आने का कारण आप पर अप्रगट नहीं, तथापि मैं उसको कहता हूं आप श्रवण करें।

श्रीकृ०—आप कहैं मैं सुनता हूं।

ब्रा०—भुवनविख्यात कुण्डलपुराधीश जिनका सुयश दिन-मणि के प्रकाश सदृश अखिल संसार में व्याप्त है—

श्रीकृ०—मैं समझ गया आप महाराज भीष्मक का नाम लेंगे।

ब्रा०—हां। एक दिन उन्होंने निजभुवनमोहिनी तनया श्रीरुक्मिणी के लिये योग्य वर विचार की कामना से सभा की।

श्रीकृ०—(स्वगत) यह महाशय राजतनया रुक्मिणी को भुवनमोहिनी उपमा से उपमानित करते हैं। पर वास्तव में वह भुवनोद्वेगिनी है, क्योंकि मैंने जिस दिवस से भगवान नारद के मुख से उसकी उपमा सुनी है, उस दिवस से ऐसा उद्विग्न हो रहा हूँ, जैसा दुष्यन्त मुनिकन्या को देखकर हुआ था, (प्रगट) तब क्या हुआ?

ब्रा०—उस काल अनेक सभासदों ने बहुत से राजकुमारों का कुलगुणरूपादि वर्णन किया, किन्तु महाराज भीष्मक ने किसी का स्वीकार न किया। किन्तु जिस काल कनिष्ट राजकुमार रुक्मकेश ने आपका नाम लिया, महाराज भीष्मक को उस समय बिना आपका लोकमोहनस्वरूप देखे केवल नाम श्रवण से ऐसा आनन्द हुआ, जैसा ग्रीष्मऋतु में सुशीतल पवन और वसन्तऋतु में पुष्पसौरभ से दर्शनाभाव में होता है और उन्होंने कुमारी रुक्मिणी के योग्य आपही को निश्चित किया।

श्रीकृ० फिर क्या हुआ?

ब्रा० – राजकुमार रुक्म को यह बात अच्छी न लगी और उन्होंने राजाज्ञा को न मान महारानी रुक्मिणी का सम्बन्ध शिशुपाल के साथ जोड़ा, अब वह बड़ी धूम-धाम से रुक्मिणी को पाणिग्रहण करने के लिये कुण्डलपुर आ रहा है।

श्रीकृ० – फिर आप यहां क्यों आये?

ब्रा० – राजनन्दिनी रुक्मिणी का मनमधुप इस घटना के पहलेही से आपके पादारविन्द के रजोग्रहण के लिये लुब्ध है। अतएव उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि यदि मैं महात्मा श्रीकृष्ण के पादपद्म की रजग्राहिणी न हो सकूँगी, तो अवश्य शरीर त्याग दूँगी. और अपने इस अकृत्रिम प्रेम के प्रभाव से जन्मान्तर में भगवान को दासी होकर अपने को कृतार्थ करूंगी। अतएव आप को भी इस विषय से अवगत करना युक्तिसंगत था. राजतनया ने मुझको कृपासिन्धु का दर्शन कराया है और यह निवेदनपत्र दिया है। (देता है)

श्रीकृ० – (लेकर स्वगत) अहा! यह प्राणप्यारी के हृत्प्रेम का प्रकाशक इस समय मुझे कैसा हर्षप्रद है। इसको स्पर्श करके शरीर पनसफल की भांति कैसा कण्टकित हो गया है, हृदय कैसा प्रफुल्ल है। जैसे कङ्गाल को पारस मिले पीछे बिना सुवर्ण बनाये चैन नहीं आता,

क्षुधित को जैसे भोजन आगे आने पर बिना खाये शान्ति नहीं होती उसी प्रकार यद्यपि यह पत्र मेरे हाथमें है तथापि मन को पठन करने के लिये कैसी उद्विग्नता हो रही है। (पत्र को खोलकर पढ़ते हैं प्रगट)

छन्द।

सिद्धि अमित श्रीमहित प्रानजीवन धन प्यारे ।
करुनावान कृपाल सकल जिय जाननवारे ॥
समन अखिल सन्ताप दीनदुखभञ्जन स्वामी ।
रखहु लाज मम धाइ अहो गरुडासनगामी ॥
गज पुकार जिमि सुनो सु त्यों मेरो सुधि लीजै ।
जिमि दमयन्तिहिं रखो व्याधते तिमि रखि लीजै ॥
धरा कांहिं जिमि कनकनयन कर ते छुटकायो ।
लङ्कनाथ ते राखि सिया जिमि जग जस छायो ॥
जञ्च फन्द ते रच्छि गोपिका दुख जिमि टार्यो ।
राखि वृकासुर ते गिरीसजा दुख जिमि दार्यो ॥
तिमि रखिकै सिसुपाल हाथ ते मम पति आई ।
लीजिय नाथ उबारि करन लगि पग सेवकाई ॥
जलविहीन जिमि मीन वायु बिन जिमि तनधारी ।
तिमि कृपाल पद छुटे होयगी दसा हमारी ॥

जदपि न मैं प्रभु जोग तदपि इक बिनय सुनीजै ।
किये बिसाखा संग चन्द को नहिं कछु छीजै ।
जिमि कुबजा को मान राखि तेहि जनम सुधारे ।
तिमि राखहु मम मान अहो दुखियन रखवारे ।
रहे व्याह मैं तीन दिवस अब श्रीगिरधारी ।
एक लक्ष्य लौं राखि लेहु मम प्रन बनवारी ।
टरैं चन्द अरु सूर टरै जग नियम अपारा ।
ध्रुवहु क्यों न टरि जाय टरै किन कनक पहारा ॥
पै न टरैगो नाथ प्रेमपन कौनेहु भाती ।
नसे आस प्रभु प्रान छाँड़िंगे चरन सँघाती ॥
करब सोई हरिऔध आस पुजवै जो ही की ।
अधिक कहां लगि लिखौं आप सब जानत जी की ॥

ब्रा०—अहा ! श्रीराजनन्दिनी का आपके चरणकमलों में कैसा अविरल प्रेम है । आर्द्रवस्त्र से जल की भांति इस गान के प्रतिपदों से आपका अनुराग टपका पड़ता है ।

श्रीकृ०- द्विजराज ! इस पत्र के पठन से मेरे हृदय में अलौकिक प्रेम की प्रतिमूर्ति सी खिंच गई है । प्राणप्यारी के सच्चे प्रेम के प्राबल्य से चन्द्र सम्मुखस्थ चन्द्र-कान्तिमणि समान मन द्रवता जाता है । क्या वास्तव में मेरे लिये श्रीरुक्मिणी की यह दशा है ! द्विजवर ! सच कहना ।